International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)
E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

बौद्ध साधना और मोक्ष

मनोज कुमारी[1], डॉ. सुमित कुमार शर्मा[2]

[1]प्रस्तोत्री- शोधार्थी, संस्कृत विभाग, सिंघानिया विश्वविद्यालय, बड़ी पचेरी
[2] निर्देशक-सहायक प्रोफेसर, सिंघानिया विश्वविद्यालय, बड़ी पचेरी

परिचय

आधुनिक विद्वान पालि भाषा में लिखे गये ग्रन्थों को ही बौद्ध मत का प्राचीनतम एवं अधिकारिक साहित्य मानते हैं। बौद्ध धर्म के पालिग्रन्थों के तीन प्रकार के संग्रह मिलते हैं जिन्हें त्रिपिटक कहा जाता है। बुद्धवचनों का संग्रह इन पिटकों में किया गया है। त्रिपिटक का अर्थ है तीन पिटारियाँ ... तीन महाग्रन्थ समूह, जिनमें बुद्ध वचन निबद्ध हैं और जो परम्परा से चले आ रहे है। ये तीन पिटक हैं- सूत्रपिटक(सुत्तपिटक) विनयपिटक और अभिधर्मपिटक(अभिधम्मपिटक)। ये ग्रन्थ समूह ही प्रारम्भिक बुद्ध धर्म एवं दर्शन जानने के लिए मूल स्त्रोत हैं।

सुत्तपिटक

यह सर्वसाधारण जनता के लिए उपदेशों का संकलन है। इसमें भगवान बुद्ध तथा उनके शिष्यों के भी वचनों का संग्रह तथा प्रधान भिक्षुक-भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं का जीवन-चरित्र भी है। इसमें बुद्धकालीन धर्म, समाज, सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, इतिहास आदि का उल्लेख है। सुत्तपिटक पाँच निकायों में विभक्त हैं - दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं - खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देश, पटिसम्भिदामग्ग, अवदान, बुद्धवंश और चरियापिटक।

अभिधम्मपिटक: यह ग्रन्थ महात्मा बुद्ध के दार्शनिक विचारों का संकलन है। इस ग्रन्थ में सबसे अधिक विवेचन द्वादश निदान या भवचक्र का है। संस्कार, वेदना, संज्ञा आदि का सांगोपांग विश्लेषण इसी ग्रन्थ से प्राप्त होता है। बौद्ध-भिक्षुओं के लिए यह परमावश्यक ग्रन्थ है। अभिधम्मपिटक में सात ग्रन्थ हैं - धम्मसंगीण, विभङ्ग, धातुकथा, पुग्गल प° ´ त्ति, कथावत्थु, यमक और पट्ठान।

विनयपिटक: यह मुख्यतया आचार संबंधी नियमों का संकलन है। इस ग्रन्थ में भिक्षुक बनने से लेकर भिक्षुक के चरित्र-सम्बन्धी सभी नियमों का वर्णन है। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं: सुत्तविभङ्ग, संधक और परिवार। सुत्तविभङ्ग के भी दो भाग हैं - भिक्खु और विभङ्ग और भिक्खुनी विभङ्ग। संधक के दो भाग हैं - महावग्ग, चुल्लवग्ग। विनयपिटक में प्रत्येक सूत्र - ‘‘तेने समयेन’ ’ अर्थात ‘उस समय’ से प्रारम्भ होता है। सुत्तपिटक में प्रत्येक सूत्र में ‘‘एवं में सुत’ ’ अर्थात ‘‘ऐसा मैंने सुना’ ’ आया है और अभिधम्म पिटक में प्रत्येक सूत्र में ‘‘तस्मिं खो पन समये’ ’ अर्थात् उस समय में कहा गया है। त्रिपिटक तो मूलतः पालि भाषा में ही लिखे गये, परन्तु आज विश्व की प्रायः प्रत्येक भाषा में इनका अनुवाद उपलब्ध है। तिब्बती, चीनी, जापानी, सिंघली, बर्मी, स्यामी आदि भाषाओं में तो त्रिपिटक टीका, उपटीका आदि सहित उपलब्ध है। ये सभी ग्रन्थ मूलतः पालि में ही हैं, कुछ का अनुवाद संस्कृत में भी हुआ है। महायान बौद्ध ग्रन्थ अधिकतर संस्कृत में हैं, जैसे नागार्जुन की माध्यमिक्कारिका, विग्रह व्यावर्तनी, आर्यदेव का चतुःशतक,

चन्द्रकीर्ति की प्रसन्नपदा, माध्यमिक वृत्ति, माध्यमिकावतार, शान्तिदेव का बोधिचर्यावतार, शिक्षा-समुच्चय, प्रज्ञाकरमति का बोधिचर्यावतार पज्जिका, असङ्ग का महायान सूत्रालङ्कार, बोधिसत्वभूमि, वसुबन्धु की विज्ञप्तिमात्र - सिद्धि, त्रिस्वभावनिर्देश, मैत्रेयनाथ का मध्यान्तविभाग, दिङ्नाग का प्रमाणसमुच्चय, आलम्बन परीक्षा, धर्मकीर्ति का न्याय-बिन्दु, प्रमाण वार्तिक, मनोरथनन्दी की प्रमाणवार्तिक वृत्ति, धर्मोतर की न्यायबिन्दु टीका, शान्तरक्षित का तत्वसंग्रह, कमलशील की तत्वसंग्रही पज्जिका आदि। इस प्रकार बौद्ध साहित्य बहुत ही विशाल है।

बौद्ध धर्म की मूलमान्यताएँ

चार आर्य सत्य:

दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःख-निरोध-मार्ग ये चार बुद्धोपदिस्ट आर्य सत्य हैं। प्रथम सत्य के अनुसार संसार दुःखमय है। यह लौकिक अनुभव से सिद्ध है। संसार के सर्व पदार्थ अनित्य और नश्वर होने के कारण दुःखरूप है। लौकिक सुख भी वस्तुतः दुःख से घिरा है। इस सुख को प्राप्त करने के प्रयास में दुःख है, प्राप्त हो जाने पर, यह नष्ट न हो जाए यह विचार दुःख देता है और नष्ट होने पर तो दुःख है ही। काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, रोग (मानस आधि और शारीरिक व्याधि), जन्म, जरा और मरण सब दुःख है। अप्रिय संयागे दुःख है, प्रिय वियोग दुःख है, इच्छा पूर्ण न होना दुःख है, स्वार्थ, हिंसा, संघर्ष आदि दुःख हैं। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये पाँचों स्कन्ध दुःख हैं। संक्षेप में, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सारा जीवन ही दुःख है। और मृत्यु भी दुःख का अन्त नहीं है क्योंकि मृत्यु के बाद पुनर्जन्म है और जन्म के बाद मृत्यु हैं, इस प्रकार यह जन्म-मृत्यु चक्र या भवचक्र चलता रहता है तथा व्यक्ति इसमें फँसकर दुःख भोगता रहता है।

द्वितीय सत्य है दुःख समुदय। इसका अर्थ है कि दुःख उत्पन्न होता है, इसका उदय या समुदय होता है। जो उत्पन्न होता है उसे कार्य कहते हैं और प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। कार्य सदा कारण सापेक्ष होता है। ‘‘कारण के होने पर ही कार्य होता है’ ’ यह नियम अटल है। कार्य उत्पत्ति के लिए हेतु प्रत्यय सामग्री आवश्यक है। कारण-कार्य की लम्बी शृंखला है जो द्वादशाङ्ग चक्र के रूप में घूमती रहती है। यह प्रतीत्यसमुत्पाद चक्र ही दुःख-समुदय का कारण है और अविद्या इसकी जननी है। अविद्याजन्य तृष्णा के कारण संसार में आसक्ति होती है और भवचक्र चलता रहता है।

तृतीय आर्य सत्य है दुःखनिरोध। कारण के होने पर कार्य उत्पन्न होता है, अतः कारण के न रहने पर कार्य भी नहीं रह सकता और न पुनः उत्पन्न हो सकता है। दुःख कार्य है, अतः उसके कारण को दूर कर देने पर दुःख का निरोध सम्भव है। अविद्या के नाश से चलने वाला द्वादशाङ्ग प्रतीत्यसमुत्पाद-चक्र भी नहीं चलता। यही दुःख-निरोध है। तृष्णा के सर्वथा क्षय होने पर अनासक्ति रूप निर्विकल्पावस्था होती है। अविद्या-निवृत्ति से अपरोक्षानुभूति द्वारा दुःख का आत्यन्तिक निरोध हो जाता है। यही निर्वाण है। यही अमृतपद है।

चतुर्थ आर्य सत्य को ‘‘दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद’ ’ अर्थात दुःखनिरोध मार्ग कहा गया है। यह नैतिक और आध्यात्मिक साधना का मार्ग है जिसे ‘‘आर्य अष्टांगिक मार्ग’ ’ की संज्ञा दी गई है। यह चतुर्थ आर्यसत्य के अन्तर्गत है।

बुद्ध ने इस दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद या अष्टांगिक मार्ग को ‘‘मध्यमाप्रतिपद्’ ’ या मध्यम मार्ग की संज्ञा दी है। इस मार्ग की विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी।

क्षणिकवाद:

क्षणिकवाद के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु अपने उत्पन्न होने के दूसरे क्षण में नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार दीपक की ज्योति प्रतिक्षण बदलते रहने पर भी समान आकार की ज्ञान-परम्परा से ''यह वही दीपक है' ' यह ज्ञान होता है, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के क्षण-क्षण में नष्ट होने पर भी पूर्व और उतर क्षणों में साद्दश्य होने के कारण वस्तु का प्रतिभज्ञान होता है। इस दर्शन में अनित्यता के नियम का कोई भी अपवाद नहीं, इसलिए यहां रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान - इन पाँचों स्कन्धों को क्षणिक माना गया है।

अनात्मवाद:

उपनिषदों में कहा है -- ''पति पत्नी को और पत्नी पति को एक-दूसरे के सुख के लिए प्रिय नही, परन्तु प्राणी-मात्र की प्रवृति अपनी-अपनी आत्मा के सुखार्थ होती है अतएव आत्मा सर्वप्रिय है। उस आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए।' ' परन्तु बुद्ध की मान्यता थी कि जो क्षणिक है। वह दुःखरूप है और जो दुःखरूप है वह आत्मा नहीं, इसलिए आत्मा मेरी नहीं और मैं उसका नहीं। ऐसी अवस्था में यदि आत्मा को सर्वप्रिय मानकर प्रवृत्ति की जाय तो मनुष्य अपनी आत्मा की सुख-साधन सामग्रियां जुटाने के लिए अहंकार का पोषण करेगा जो सब दुःखों का मूल कारण है। अतएव बौद्ध दर्शन के रूप वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार -- इन पाँच स्कन्धों को छोड़कर आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं, पंच स्कन्धों से उत्पन्न होने वाली शक्ति ही आत्मा अथवा विज्ञान है। यह विज्ञान नदी में प्रत्येक क्षण नये-नये जल के बहते रहने पर भी नदी के जल-प्रवाह का अविकल रूप से ज्ञान होता है, अथवा जिस प्रकार दीपक की ज्योति क्षण-क्षण में बदलते रहने पर भी सद्दश परिवर्तन के कारण अखंड रूप से प्रतीत होती है, उसी प्रकार बाल, युवा और वृद्धावस्था में विज्ञान में प्रतिक्षण परिवर्तन होने पर भी समान परिवर्तन के कारण विज्ञान (आत्मा) एक रूप मे प्रतीत होता है।

बौद्ध दर्शन में बंधन एवं निर्वाण

''सब कुछ अनित्य है, सब कुछ निःसार है तथा केवल निर्वाण में ही शान्ति है।

भगवान बुद्ध के काल में भारत में दार्शनिक जीवन की यथार्थताओं को भूलकर ईश्वर, आत्मा तथा जगत की उत्पत्ति इत्यादि से सम्बन्धित शुष्क चिन्तन में व्यस्त थे। विचारों को व्यवहार में परिणत करना भी आवश्यक है, इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं था। बुद्ध के सामने महान कार्य यह था कि किस प्रकार लोगों का ध्यान शुष्क तत्व-मीमांसा के वाग्जाल से जीवन के दुःखों को दूर करने वाले आचार-शास्त्र की ओर, या कोरे सिद्धान्त से व्यवहार की ओर ले जाया जाए। बुद्ध ने देखा कि अन्तहीन जीवन-मरण का चक्र ही सब दुःखों की जड़ है। उन्होंने इस चक्र को रोक देने के लिए या दूसरे शब्दों में, संसार-सागर से पार होने के लिए धम्म की शिक्षा दी। ऐसा व्यक्ति जो धम्म को जानता तो है परन्तु अपने जीवन को उसके अनुरूप नहीं ढालता, उस ग्वाले के समान है जो जीवन भर केवल दूसरों की गैयाओं को ही गिनता रहता है परन्तु जिसकी स्वयं की कोई गैया नहीं है।

तत्वमीमांसा के प्रश्नों पर भगवान बुद्ध ने जानबूझकर मौन रखा। उनके मौन का कारण यह नहीं था कि ''वे यह नहीं जानते थे कि इन प्रश्नों के क्या उत्तर दिये जायें' ' जैसा कि प्रो. पूसे का मत है या वे सच्चे अज्ञेयवादी थे, जैसा कि प्रो. कीथ का मत है। उनके तत्व मीमांसा के प्रश्नों पर मौन का अत्यन्त सहज कारण, जैसा कि वे स्वयं कहते

हैं, यह था कि इन प्रश्नों के उत्तर न तो हमें नैतिक पूर्णत्व प्राप्त करने में सहायक होते हैं, न वे हमें सांसारिक दुःखों को दूर करने में सहायक होते हैं और न ही वे निर्वाण प्राप्ति में सहायक होते हैं। एक अवसर पर उन्होंने कहा था, "हे भिक्षुओ तथागत यह (उनके समकालीन तत्वमीमांसक जो जानते थे) जानते हैं और इससे अधिक जानते हैं। अतः यह समझना भूल होगी कि वे तत्वमीमांसा के सम्बन्ध में अज्ञानी या अज्ञेयवादी थे। वे मानव बुद्धि को भी जानते थे। वे यह जानते थे कि मानव बुद्धि इन्द्रियातीत विषयों का हमें कोई अन्तिम एवं सन्तोषजनक समाधान प्रदान नहीं कर सकती। बुद्धि या तर्क किसी परिणाम पर न पहुंचकर केवल वाग्जाल में फंसी रहती है। अतः तात्विक समस्याओं के हल के चक्कर में न पड़कर निर्वाण प्राप्ति का प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर है। यही भगवान बुद्ध की शिक्षा का सार है।

संक्षेप में कहा जाये तो भगवान बुद्ध ने केवल सांसारिक दुःखों की ओर ही हमारा ध्यान दिलाया, इन दुःखों का कारण बतलाया और दुःखों को दूर करने का उपाय बतलाया। वे अक्सर अपने शिष्यों से कहते थे कि इस संसार में काम, घृणा, द्द्ःख और जरा-मरण की आग लग गयी है। इस आग में वही रक्षित रह सकता है जो तत्व-मीमांसा के र्वाजाल को छोड़ नैतिक जीवन जीना प्रारम्भ कर देता है। भगवान बुद्ध की सम्पूर्ण शिक्षा का सार प्रसिद्ध आर्यसत्यों में निहित है।

पृथ्वी पर जीवन दुःखों से पूर्ण है। यह हमारा दैनिक जीवन का अनुभव है। दुःखों का मूल कारण हमारी सांसारिक भोगों को भोगने की अतृप्त इच्छा (तृष्णा) है। यही वह मूल कारण है जिसके कारण जीव को बार-बार इस संसार में आना पड़ता है। संसार या जीवन-मरण के चक्र का कोई प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता। इस बात को भगवान बुद्ध बड़े सुन्दर ढंग से घास, पृथ्वी, आंसू, और दूध की उपमाएं देकर समझाते हैं । भगवान बुद्ध कहते हैं कि भिक्षुओं! जैसे कोई पुरूष सारे जम्बुदीप की घास, लकड़ी, डाली और पŸाोें को तोड़कर एक जगह जमा कर दें और चार-चार अंगुली भर के टुकड़े फेंकता जाय- यह मेरी माता की माता हुई इत्यादि तो यह माता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, किन्तु सारे जम्बुदीप की घास, लकड़ी, डाली और पŸो समाप्त हो जायेंगे। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कोई पुरूष यदि सारी महापृथ्वी को बेर के बराबर फेंकता जाए - यह मेरा पिता, यह मेरे पिता का पिता तो उसके पिता के पिता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा किन्तु महापृथ्वी समाप्त हो जाऐगी। इसी प्रकार चिरकाल से जन्मते, अप्रिय के संयोग और प्रिय के विचोग से रोते हुए लोगों के अश्रु अधिक हैं, या चार महासमुद्रों का जल? भगवान बुद्ध कहते हैं कि जो अश्रु गिरे है, वे चारों महासमुद्रों के जल से अधिक है। इसी प्रकार चिरकाल से जनमते मरते रहे, माता का पिया गया दूध अधिक है या चारों महासमुद्रों का जल? भगवान बुद्ध कहते हैं। कि चारों महासमुद्रों का जल? भगवान बुद्ध कहते हैं कि चारों महासमुद्रों के जल से माता का पिया गया दूध अधिक है। वे कहते हैं कि जैसे गंगा नदी के उद्ग

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुनिस्वामी ब्रह्मलीन, पातंजल योग दर्शन, चैखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1970
2. महर्षि पतंजलि योगसूत्र (पातंजल योगदर्शनम्) भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1971
3. व्यासदेव, व्यास भाष्य (पातंजल योग दर्शनम्), भारतीय विद्या प्रकाशन, वारणसी, प्रथम संस्करण, 1971
4. विज्ञान भिक्षु: योग वार्तिक (पातंजल योग दर्शनम्), भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, प्रथम